देवपूजा – प्रकरण (क्रमशः)

पुष्प – पत्रादि

प्रातःकालिक स्नानादि कृत्यों के बाद देवपूजा का विधान है। अतः स्नान के बाद तुलसी, बिल्वपत्र और फूल आदि तोड़ने चाहिये।[1] तोड़ने से पहले हाथ – पैर धोकर आचमन कर ले। पूरब की ओर मुँहकर हाथ जोड़कर यह मंत्र बोले –

माऽनुशोकं कुरुष्व त्वं स्थानत्यागं च मा कुरु।
देवतापूजनार्थाय प्रार्थयामि वनस्पते।। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 70 – 71)

---

1. हारीत का वचन है –

स्नानं कृत्वा तु ये केचित् पुष्पं चिन्वन्ति मानवाः।
देवतास्तन्न गृह्णन्ति भस्मी भवति काष्ठवत्।। (आचारेन्दुः पृ. 160 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 68)

इस वचन के अनुसार स्नान कर फूल न तोड़ें, क्योंकि ऐसा करने से देवता इसे स्वीकार नहीं करते। इस शब्दार्थ से आपाततः प्रतीत होने लगता है कि सबेरे उठकर स्नान करने के पहले ही फूल तोड़ ले, किन्तु इस श्लोक का यह तात्पर्य नहीं है। निबंधकारों ने निर्णय दिया है कि यहाँ 'स्नान' का तात्पर्य 'मध्याह्न – स्नान' है। अतः फलितार्थ होता है कि मध्याह्न – स्नान के बाद फूल तोड़ना मना है, इससे पहले ही प्रातः – स्नान के बाद तोड़ ले।

(क) **स्नानमत्र प्रातः स्नानातिरिक्तं, प्रातः स्नानोत्तरं पुष्पाहरणादिविधानात्।** (वीरमि. पू. प्र. पृ. 68)

(ख) **तन्मध्याह्नस्नानपरम्।** (आचारेन्दुः पृ. 160)

(ग) रुद्रधर का मत है –

अस्नात्वा तुलसीं छित्त्वा देवतापितृकर्मणि।
तत्सर्वं निष्फलं याति पञ्चगव्येन शुध्यति।। (आचारेन्दुः पृ. 160 तथा अनुष्ठानप्र. पृ. 12)

इस 'पद्मपुराण' के वचन में 'तुलसी' पद पुष्प आदि का उपलक्षक है। अतः इस वचन से सिद्ध होता है कि स्नान किये बिना ही यदि तुलसीदल, फूल आदि तोड़ लिये जायँ तो पाप लगता है, जिसकी शुद्धि पञ्चगव्य से होती है –

अत्र तुलसीपदं पुष्पमात्रपरम्। शिष्टाचारानुरोधादिति रुद्रधरः। (आचारेन्दुः पृ. 160)

(घ) 'अनुष्ठानप्रकाशः' पृ. 12 पर कहा गया है कि –

स्नात्वा मध्याह्नसमये न च्छिन्द्यात्कुसुमं नरः।
तत्पुष्पस्यार्चने देवि रौरवे परिपच्यते।।

अर्थात् मध्याह्न – स्नान के पश्चात् पुष्प नहीं तोड़ना चाहिये क्योंकि उस फूल से पूजा करने पर व्यक्ति रौरव नरक में पकाया जाता है।

(ङ.) दक्ष ने समिधा, फूल आदि का समय प्रातः – संध्या के बाद दिन का दूसरा भाग माना है। दिन को आठ भागों में बाँटा गया है –

'समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः।' (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ.. 70)

पहला फूल तोड़ते समय '**ॐ वरुणाय नमः**' दूसरा फूल तोड़ते समय '**ॐ व्योमाय नमः**'[1] और तीसरा फूल तोड़ते समय '**ॐ पृथिव्यै नमः**' बोले।[2] चौथा एवं पाँचवां आदि पुष्प बिना मंत्र के चुने। पूर्वाभिमुख होकर फूल तोड़ना अच्छा माना गया है।

तुलसी एवं बिल्वपत्र क्रमशः भगवान् विष्णु एवं शिव की पूजा में विशेष महत्त्व रखते हैं, इनके अभाव में पूजा उत्तम नहीं मानी जाती। अतः यहाँ पर हम तुलसी एवं बिल्वपत्रों संबंधी नियमों की विशेष रूप से चर्चा करेंगे।

स्कंदपुराण का वचन है कि जो हाथ पूजार्थ तुलसी चुनते हैं, वे धन्य हैं –

तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लवाः। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 42)

तुलसी का एक-एक पत्ता न तोड़कर पत्तियों के साथ अग्रभाग को तोड़ना चाहिये। तुलसी की मंजरी सब फूलों से बढ़कर मानी जाती है। मंजरी तोड़ते समय उसमें पत्तियों का रहना भी आवश्यक माना गया है।

मञ्जर्यां पत्रसाहित्यमपेक्षितम्। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 42)

अभिन्नपत्रां हरितां हृद्यमञ्जरिसंयुताम्।
क्षीरोदार्णवसम्भूतां तुलसीं दापयेद्धरिम्।। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 45-46)

निम्नलिखित मंत्र पढ़कर पूज्यभाव से पौधे को हिलाये बिना तुलसी के अग्रभाग को तोड़े। इससे पूजा का फल लाख गुना बढ़ जाता है।

मन्त्रेणानेन यः कुर्यात् गृहीत्वा तुलसीदलम्।
पूजनं वासुदेवस्य लक्षपूजाफलं लभेत्।। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 47)

तुलसीदल तोड़ने का मंत्र –

तुलस्यमृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने।।
त्वदङ्गसंभवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु विचित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि।। (आचारेन्दुः पृ. 161)

वैधृति और व्यतीपात – इन दो योगों में (जिनका ज्ञान पंचांग से होता है), मंगल, शुक्र और

---

1. यह आर्ष प्रयोग है – **व्योमायेतिच्छान्दसम्।** (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 70)
2. **प्रक्षाल्य पाणी पादौ च आचम्य च कृताञ्जलिः।**
पादपाभिमुखो भूत्वा प्रणवादिनमोऽन्तकम्।।
विसृज्य पुष्पमेकं तु वाचा वरुणमुच्चरेत्।
व्योमाय च पृथिव्यै च द्वित्रिपुष्पं यथाक्रमम्।। (आचारेन्दुः पृ. 161 तथा वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 70)

रवि- इन तीन वारों में, द्वादशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा-इन तीन तिथियों में, संक्रांति और जननाशौच तथा मरणाशौच में तुलसीदल तोड़ना मना है।

वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु।
पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये।।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः।

(आचारेन्दुः पृ. 161 तथा निर्णयसिंधुः पृ. 717)

संक्रान्ति, अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी, रात्रि, दोनों संध्याओं में भी तुलसीदल न तोड़े[1], किन्तु तुलसी के बिना भगवान् विष्णु की पूजा पूर्ण नहीं मानी जाती, अतः निषिद्ध समय में तुलसीवृक्ष से स्वयं गिरी हुई पत्ती से पूजा करे।[2] पहले दिन के पवित्र स्थान पर रखे हुए तुलसीदल से भी भगवान् की पूजा की जा सकती है। शालग्राम की पूजा के लिये निषिद्ध तिथियों में भी तुलसी तोड़ी जा सकती है।

शालग्रामशिलार्चार्थं प्रत्यहं तुलसीक्षितौ।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लवाः।।
सङ्क्रान्त्यादौ निषिद्धेऽपि तुलस्यवचयः स्मृतः।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 109 की पाद टिप्पणी)

बिना स्नान के और जूता पहनकर भी तुलसी न तोड़ें। क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति नरक जाता है।

अस्नात्वा तुलसीं छित्त्वा सोपानत्कस्तथैव च।
स याति नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम्।। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 46)

तुलसी की भाँति बिल्वपत्र तोड़ने का भी विशिष्ट मन्त्र है। उसे पढ़कर ही तोड़ना उत्तम होता है। मन्त्र इस प्रकार है-

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा।

---

1. **संक्रान्तौ कृष्णपक्षान्ते द्वादश्यां निशि संध्ययोः।**
नच्छिन्द्यात्.....।।
(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 109 की पादटिप्पणी)
संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशि सन्ध्ययोः।
यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम्।। (निर्णयसिंधुः पृ. 717 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 48)
2. **निषिद्धे दिवसे प्राप्ते गृह्णीयाद् गलितं दलम्।**
तेनैव पूजां कुर्वीत न पूजा तुलसीं विना।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 109 की पादटिप्पणी)

गृहणामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्।। (आचारेन्दुः पृ. 161)

चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी और अमावस्या तिथियों को, संक्रान्ति के समय और सोमवार को बिल्वपत्र न तोड़े।

अमारिक्तासु संक्रान्त्यामष्टम्यामिन्दुवासरे।
बिल्वपत्रं न च च्छिन्द्याच्छिन्द्याच्चेन्नरकं व्रजेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 161)

चूँकि बिल्वपत्र शंकरजी को बहुत प्रिय है, अतः निषिद्ध समय में पहले दिन का रखा बिल्वपत्र चढ़ाना चाहिये। शास्त्र ने तो यहाँतक कहा है कि यदि नूतन बिल्वपत्र न मिल सके तो चढ़ाये हुए बिल्वपत्र को ही धोकर बार-बार चढ़ाता रहे।

अर्पितान्यपि बिल्वानि प्रक्षाल्यापि पुनः पुनः।
शङ्करायार्पणीयानि न नवानि यदि क्वचित्।। (आचारेन्दुः पृ. 165)

ताजे बिल्वपत्र के अभाव में सूखे एवं बासी बिल्वपत्र से भी व्यक्ति भगवान् शिव की पूजा कर सकते हैं।

शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद।
पूजयेद्गिरिजानाथमलाभे यत्नतो नरः।। (आचारेन्दुः पृ. 164)
शुष्कैः पर्युषितैर्वापि बिल्वपत्रैस्तु यो नरः।
पूजयंस्तु महादेवं मुच्यते सर्वपातकैः।। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 214)

बिल्वपत्र चक्र एवं वज्र से रहित होने पर ही चढ़ाने योग्य होता है। बिल्वपत्र में कीड़ों के द्वारा बनाया हुआ जो सफेद चिन्ह होता है उसे चक्र कहते हैं और बिल्वपत्र के डंठल की ओर जो थोड़ा सा मोटा भाग होता है वह वज्र कहलाता है। चढ़ाने से पहले वज्र को तोड़ देना चाहिये। कीड़ों से खाया हुआ, कटा-फटा, छिद्रयुक्त तथा तीन दलों से न्यून दलवाला बिल्वपत्र चढ़ानेयोग्य नहीं होता। बिल्वपत्र चढ़ाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इसका चिकना भाग मूर्ति या लिंग की ओर रहे।

फूल, फल और पत्ते जैसे उगते हैं, वैसे ही उन्हें चढ़ाना चाहिये (‘**यथोत्पन्नं तथार्पणम्**’, आचारेन्दुः पृ. 162)[1] उत्पन्न होते समय इनका मुख ऊपर की ओर होता है, अतः चढ़ाते समय इनका मुख ऊपर की ओर ही रखना चाहिये। इनका मुख नीचे की ओर न करें।

---

(1) **पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं वापि तथैव च।**
केशवार्थे शिवार्थे वा यथोत्पन्नं तथार्पयेत्।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 11)
पुष्पं वा यदि वा पत्रं यथोत्पन्नं तथाऽर्पणम्। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 239)

पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्।। (आचारेन्दुः पृ. 162)

दूर्वा एवं तुलसीदल को अपनी ओर और बिल्वपत्र नीचे मुखकर चढ़ाना चाहिये।

दूर्वाः स्वाभिमुखाग्राः स्युर्बिल्वपत्रं त्वधःकृतम्। (आचारेन्दुः पृ. 162)

तुलस्यादिपत्रम् आत्माभिमुखं न्युब्जमेव समर्पणीयम्।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 113)

पुनः **तस्मादधोमुखं देयं बिल्वपत्रं च शंकरे।**[1] (आचारेन्दुः पृ. 162)

दूर्वा, तुलसीदल एवं बिल्वपत्र से भिन्न पत्तों को ऊपर मुखकर या नीचे मुखकर दोनों ही प्रकार से चढ़ाया जा सकता है।

इतरपत्राणामप्यूर्ध्वमुखाधोमुखत्वयोर्विकल्पः। (आचारेन्दुः पृ. 163)

परन्तु पुष्पांजलि देते समय पुष्पों के अधोमुख होने का दोष नहीं होता(मन्त्रमहोदधिः 22/92)।

दाहिने हाथ को उत्तान(सीधा) कर मध्यमा, अनामिका और अँगूठे की सहायता से फूल चढ़ाना चाहिये।

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः पुष्पं संगृह्य पूजयेत्। (आचारेन्दुः पृ. 162)

जबकि चढ़े हुए फूल को अँगूठे और तर्जनी की सहायता से उतारे।

अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु निर्माल्यमपनोदयेत्। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 11)

ताजे, छिद्ररहित, जीवों से वर्जित, प्रोक्षण (जल का छिड़काव) किये गये तथा अपने बगीचे में पैदा हुए मुख्य विहित फूलों से भक्तिपूर्वक देवताओं की पूजा करे। कीड़े लगे हुए, जमीन पर गिरे हुए, बासी, मल आदि लगे हुए और कली[2] से देवता की पूजा न करें। इसी प्रकार बिना पके और कीड़े लगे हुए फलों से देवता की पूजा न करे।

अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः।
आत्मारामोद्भवैर्मुख्यैर्भक्त्या संपूजयेत्सुरान्।।
त्यजेत्कीटावपन्नानि शीर्णपर्युषितानि च।
स्वयंपतितपुष्पाणि मलाद्युपहतानि च।।
मुकुलैर्नार्चयेद्देवमपक्वैः कृमियुक् फलैः। (धर्मसिन्धुः पृ. 659)

भगवान् पर चढ़ाया हुआ फूल 'निर्माल्य' कहलाता है; सूँघा हुआ या अंग में लगाया हुआ

---

(1) **पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्।**
यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम्।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12)

(2) कमल की कली इसका अपवाद मानी जाती है।

फूल भी इसी कोटि में आता है। इन्हें न चढ़ायें।

निर्माल्यं द्विविधं प्रोक्तमुत्सृष्टं घ्रातमेव च।
न क्रियान्तरयोग्यं तत् सर्वथा त्याज्यमेव च। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 57)
आघ्रातैरङ्गसंस्पृष्टैरुषितैश्चैव नार्चयेत्। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 59)

परन्तु भौंरे के सूँघने से फूल दूषित नहीं होता (**मुक्त्वा भ्रमरमेकं तु**। नित्यकर्म पू. प्र. पृ. 112)। जो फूल अपवित्र बर्तन में रख दिया गया हो, अपवित्र स्थान में उत्पन्न हो, आग से झुलस गया हो, कीड़ों से विद्ध हो, सुन्दर न हो, जिसकी पंखुड़ियाँ बिखर गयीं हों, जो पृथ्वी पर गिर पड़ा हो, जो पूर्णतः खिला न हो, जिसमें खट्टी गंध या सड़ाँध आती हो, निर्गन्ध हो या उग्र गन्धवाला हो – ऐसे पुष्पों को नहीं चढ़ाना चाहिये।

कुपात्रान्तरसंस्थानि कुत्सितस्थानजानि च।
वह्निकीटापविद्धानि विशोभान्यशुभानि वै।
एवंविधानि पुष्पाणि त्याज्यान्येव विचक्षणैः।।
.....महीगतैः।
न विशीर्णदलैः स्पृष्टैर्नाशुभैर्नाविकासिभिः।
पूतिगन्धीन्यगन्धीन्यम्लगन्धीनि वर्जयेत्।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 59)
नार्पयेद्भूमिपतितं कोरकं कृमिभक्षितम्
अङ्गलग्नं समाघ्रातं म्लानं पर्युषितं तथा।।
उग्रगन्धमगन्धं च कृमिकेशादिदूषितम्।
अशुद्धपात्रप्राण्यङ्गवासोभिः कुत्सितात्मभिः।।
आनीतं तन्निषिद्धं स्यान्मध्याह्नस्नानतस्तथा।

(पुरश्चर्यार्णव, संपादक, मुरलीघर झा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1985 पृ. 231)

जो फूल बायें हाथ, पहननेवाले अधोवस्त्र, आक और रेंड़ (एरण्ड) के पत्ते में रखकर लाये गये हों, वे फूल त्याज्य हैं।

करानीतं पटानीतमानीतं चार्कपत्रके।
एरण्डपत्रेष्वानीतं तत्पुष्पं सकलं त्यजेत्।।
करोऽत्र वामकरः। पटः अधोवस्त्रम्।

(आचारेन्दुः पृ. 156 तथा वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 60)

फूल की कलियों को चढ़ाना मना है, किन्तु यह निषेध चम्पा एवं कमल पर लागू नहीं होता।

मुकुलैर्नार्चयेद्देवं पङ्कजैर्जलजैर्विना।[1] (नित्यकर्म – पूजाप्रकाश पृ. 112)

फूलों को जल में डुबाकर धोना मना है। केवल जल से इसका प्रोक्षण कर देना चाहिये।

गन्धोदकेन चैतानि त्रिः प्रोक्ष्यैव प्रपूजयेत्।

(नित्यकर्म – पूजाप्रकाश पृ. 113 तथा आचारेन्दुः पृ. 164)

जमीन पर गिरे हुए, बिना खिले हुए (अर्थात् कलीरूप में), मुर्झाये हुए, खट्टी गंध से युक्त, जंतुओं द्वारा दूषित, सूँघे हुए, शरीर पर धारण किये हुए तथा बासी फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये।

पतितैर्मुकुलैर्म्लानैश्चाम्लैर्वा जन्तुदूषितैः।।
आघ्रातैरङ्गसंस्पृष्टैरुषितैश्चैव नार्चयेत्।

(वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 59 तथा थोड़े अन्तर के साथ आचारेन्दुः पृ. 155)

उग्रगन्धवाला, निर्गन्ध, कृमिकेशादि द्वारा दूषित, अशुद्ध पात्र में रखा हुआ, कुत्सित आत्मा द्वारा लाया हुआ तथा प्रमादपूर्वक लाया हुआ पुष्प शिवजी पर नहीं चढ़ाना चाहिये। और न ही कलियों को चढ़ाना चाहिये सिवा चम्पा एवं कमल के।

उग्रगन्धमगन्धं च कृमिकेशादिदूषितम्।
अशुद्धपात्रे प्राण्यङ्गवासोभिः कुत्सितात्मभिः।।
आनीतं नार्पयेच्छंभोः प्रमादादपि दोषकृत्।
कलिकाभिस्तथा नेज्यं विना चम्पकपङ्कजैः।। (आचारेन्दुः पृ. 158)

इसी प्रकार श्मशानभूमि तथा चैत्यवृक्ष पर उत्पन्न फूलों से भी पूजा नहीं करनी चाहिये।(आचारेन्दुः पृ. 156 तथा वीरमित्रो. पू. प्र. पृ. 60)। नित्यपूजा के लिये दूसरे के बगीचे आदि से भी पुष्प आदि लेने में चोरी आदि का दोष[2] नहीं होता, पूजा आदि के लिये फूल आदि की याचना नहीं करनी चाहिये। (धर्मसिन्धुः पृ. 660)

वानस्पत्ये फले मूले दार्वग्न्यर्थं च गोस्तृणम्।
देवतार्थं च कुसुममस्तेयं मनुरब्रवीत्।। (आचारेन्दुः पृ. 160)

समिधा, पुष्प और कुश आदि लिये हुए व्यक्ति को प्रणाम नहीं करे और व्यक्ति उनको स्वयं लिये हुए दूसरे को प्रणाम न करे, क्योंकि वह उन दोनों का निर्माल्य हो जाता है। फलस्वरूप

---

(1) इस आशय के श्लोक आचारेन्दुः पृ. 155 तथा 156 एवं वीरमि. पू. प्र. पृ. 59 और 60 पर भी पाये जाते हैं। यथा **'कलिकाभिस्तथा नेज्यं विना चम्पकपङ्कजैः।'** (आचारेन्दुः पृ. 155)

(2) अगर अन्य व्यक्ति अपने बगीचे आदि से फूल आदि तोड़े जाने पर नाराज होता हो, मना करता हो अथवा दुःखी होता हो तो उसका फूल नहीं लेना चाहिये। तथा उसकी अनुपस्थिति में लिया गया फूल चोरी के दोष से युक्त हो जाता है।

वह देव – पितृ – कर्म के योग्य नहीं रह जाता।

समित्पुष्पकुशादीनि वहन्तं नाभिवादयेत्।
तद्धारी चैव नान्यान् हि निर्माल्यं तद्भवेत्तयोः।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 660 तथा आचारेन्दुः पृ. 164)

समित्पुष्पकुशाग्न्यम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकम्।
जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवाद्येत वै द्विजम्।। (आचारेन्दुः पृ. 164)

फूल के अभाव में पत्ते से पूजा करें। पत्ता न मिलने पर फलों[1] से पूजा करें। फलों के न मिलने पर तृण, गुल्म और औषधियों को निवेदित करें। औषधियों के अभाव में मानसिक फूलों आदि की कल्पना कर भक्तिपूर्वक पूजा करें।

अलाभेऽपि च पुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत्।
पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत्।।
फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि।
औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजितः।।

(वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 216 तथा धर्मसिन्धुः पृ. 659 पर भी इसी आशय के श्लोक हैं।)

जो फूल, पत्ते और जल बासी(पर्युषित) हो गये हों, उन्हें देवताओं पर न चढ़ायें। किन्तु तुलसीदल और गंगाजल बासी नहीं होते। तीर्थों का जल भी बासी नहीं होता।

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्।।[2]
न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि। (निर्णयसिन्धुः पृ. 718 – 719, वीरमि. पू. प्र. पृ. 49 तथा आचारेन्दु पृ. 163 पर भी इस आशय के श्लोक मिलते हैं।)

माली के घर में रखे हुए फूलों में बासी होने का दोष नहीं आता और न ही बिल्वपत्र तथा सभी प्रकार के कमलों में। (आचारेन्दु पृ. 163 तथा धर्मसिन्धुः पृ. 660)

तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च।
न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च।।[3] (आचारेन्दुः पृ. 163)

दौना तुलसी की ही तरह एक पौधा होता है। भगवान् विष्णु को यह बहुत प्रिय है।

(1) यहाँ पर फल को फूलों के विकल्प के रूप में बताया गया है। अर्थात् जिस अवसर पर फूल चढ़ाना हो उस अवसर पर फल को चढ़ाये। फूल के विकल्प में फल चढ़ाने के बाद भी फल चढ़ाने के अवसर पर फल चढ़ाना चाहिये।

(2) इसी तरह का श्लोक अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 49 में भी मिलता है।

(3) इसी तरह का मत 'पुरश्चर्यार्णव' पृ. 231 में भी व्यक्त किया गया है।

स्कंदपुराण में आया है कि दौना की माला भगवान् को इतना प्रिय है कि वे इसे सूख जाने पर भी स्वीकार कर लेते हैं।

तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी।
शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति क्वचित्।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 111)

वस्त्र, यज्ञोपवीत और आभूषण में भी निर्माल्य का दोष नहीं आता।

निर्माल्यं न भवेद् वस्त्रं स्वर्णरत्नादिभूषणम्। (आचारेन्दुः पृ. 150)

मणि, रत्न, सुवर्ण, वस्त्र आदि से बनाये गये फूल बासी नहीं होते। इन्हें प्रोक्षण कर चढ़ाना चाहिये।

मणिरत्नसुवर्णादिनिर्मितं कुसुमोत्तमम्।
तत्परं कुसुमं प्रोक्तमपरं चित्रवस्त्रजम्।।
पराणामपराणां च निर्माल्यत्वं न विद्यते। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 57)
वस्त्रमभ्युक्षणाच्छुध्येत्। (वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 58 तथा आचारेन्दुः पृ. 150)

इसी प्रकार फूल की माला भी बासी नहीं होती (**ग्रथितानि च पुष्पाणि नैव पर्युषितानि वै।।** आचारेन्दुः पृ. 164)।

नारदजी ने 'मानस' (मन के द्वारा भावित या कल्पित) फूल को सबसे श्रेष्ठ फूल माना है। उन्होंने देवराज इन्द्र को बतलाया है कि हजारों करोड़ों बाह्य फूलों को चढ़ाकर जो फल प्राप्त किया जा सकता है, वह केवल एक मानस-पुष्प चढ़ाने से प्राप्त हो जाता है।

बाह्यपुष्पसहस्राणां सहस्रायुतकोटिभिः।।
पूजिते यत्फलं पुंसां तत्फलं त्रिदशाधिप।
मानसेनैकपुष्पेण विद्वानाप्नोत्यसंशयम्।
तस्मान्मानसमेवातः शस्तं पुष्पं मनीषिणाम्।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 57)

बाह्य-पुष्पों की भाँति मानस-पुष्प कभी भी निर्माल्य नहीं होते। 'आचारेन्दुः' में कुछ फूलों के पर्युषित होने का काल बताया गया है। जैसे बिल्व तीस दिन, अपामार्ग तीन दिन, जूही एक दिन, तुलसी छः दिन, शमी छः दिन, शतावरी ग्यारह दिन, केतकी चार दिन, भृंगराज नौ दिन, दूर्वा आठ दिन, मन्दार एक दिन, कमल एक दिन, नागकेश्वर दो दिन, कुश तीस दिन, अगस्त्य तीन दिन, तिल एक दिन, तगर छः दिन, ब्राह्मी छः दिन, कह्लार ग्यारह दिन, मल्लिका चार दिन, चम्पा नौ दिन, करवीर आठ दिन, पाटला एक दिन, दौना एक दिन एवं मरवा (जिसका पत्ता तुलसी की तरह होता है) दो दिन के पश्चात् बासी होता है। (आचारेन्दुः पृ. 163-164 तथा धर्मसिन्धुः पृ. 660-661)

अलग-अलग ग्रन्थों में फूलों के पर्युषित होने के काल अलग-अलग लिखे मिलते हैं।

कुछ फूलों एवं पत्तों में पर्युषित होने का दोष नहीं लगता जैसे –

नैव पर्युषितं पद्मं तुलसीबिल्वपत्रकम्।।
कुन्दं च दमनं चैवागस्त्यं च कलिका तथा। (धर्मसिन्धुः पृ. 660)

पुनः – **बिल्वपत्रं च माघ्यं च तमालामलकीदले।**
कह्लारं तुलसी चैव पद्मं च मुनिपुष्पकम्।।
एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा। (निर्णयसिन्धुः पृ. 719)

अर्थात् कमल, तुलसी, बिल्वपत्र, कुन्द, दमन (दौना), अगस्त्य का फूल तथा कली – ये बासी नहीं होते। बिल्वपत्र, माघ्य (कुन्द), तमाल, आंवले के पत्र, कह्लार, तुलसी, कमल, अगस्त्य के फूल, कलिका तथा कुशा भी पर्युषित नहीं होते।

पर्युषित होने संबंधी मतान्तर में न जाकर सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि यथासंभव ताजा फूल, पत्ते तथा फल चढ़ाने का प्रयास करना चाहिये। तुलसी, बिल्वपत्र एवं तीर्थजल किसी भी प्रकार का चढ़ाया जा सकता है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि पूजा के उपचारों में कोई कमी हो तो उसकी मानसिक कल्पना कर लेनी चाहिये। फूलों – फलों या पत्रों के अभाव में उसकी मानसिक भावना कर लें। किसी भी देवता को सभी प्रकार के फूल नहीं चढ़ते। परन्तु विहित पुष्पों के अभाव में किसी भी प्रकार के पुष्पों से भक्तिपूर्वक की गयी पूजा देवों को स्वीकार्य है।

सर्वैः पुष्पैः सदा पूज्या विहिताविहितैरपि।
कर्त्तव्या सर्वदेवानां भक्तियोगोऽत्र कारणम्।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 239)

विभिन्न देवताओं के विहित एवं निषिद्ध पुष्पों की चर्चा अलग से की जायेगी।

आरती (नीराजन), दक्षिणा एवं पुष्पांजलि

आरती पाँच प्रकार से की जाती है – दीपमाला से, शंख भरे जल से, धुले वस्त्र से, आम एवं पीपल आदि के पत्तों से तथा साष्टांग प्रणाम द्वारा।[1] आरती के लिये कपूर की बत्ती का प्रयोग करें। आरती के दीपक के साथ शिलापिष्टिका का उपयोग करना चाहिये ताकि जिसकी मदद से आरती के समय दीपक को देव – प्रतिमा के समक्ष घुमाया जा सके। आरती अनेक बत्तियों से करनी चाहिये। सामान्यतया आरती को देवता के चरणों में पहले चार बार घुमाये तदन्तर क्रमशः दो – दो बार नाभि – देश और मुखमण्डल पर तथा सात बार सम्पूर्ण अंगों के चतुर्दिक घुमाये। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14)

---

1. **पञ्चनीराजनं कुर्य्यात्प्रथमं दीपमालया। द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा।।**
चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्त्तितम्। पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14)

आरती संपन्न होने के पश्चात् दीपक की ज्योति पर हाथ घुमाकर उसे सभी लोगों को अपने मुख पर फेरना चाहिये। आरती के समय चारों प्रकार के वाद्यों के साथ अथवा केवल घंटा-ध्वनि करते हुए उच्च स्वर से स्तोत्र अथवा मंत्र-पाठ करते रहना चाहिये।[1] आरती के पश्चात् जयघोष तथा नाना प्रकार के वेदोक्त मंत्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के पुष्पों से तीन बार पुष्पांजलि देना चाहिये।

नानावेदोक्तमन्त्रैश्च अन्ते पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्। (आचारेन्दुः पृ. 172)

पुष्पांजलि समर्पित करते समय फूलों के अधोमुख होने तथा पर्युषित होने का दोष नहीं माना जाता।

पुष्पं पत्रं फलं देवे न प्रद्यादधोमुखं।।
पुष्पाञ्जलौ न तद्दोषस्तथापर्य्युषितस्य च। (मन्त्रमहोदधिः 22/92-93)

पुष्पांजलि के उपरान्त पुनः नमस्कार करें। नीराजन से पहले कई बार प्रतिमा पर दक्षिणा चढ़ाया जाता है। दक्षिणा का धन ब्राह्मण या मंदिर आदि को दे देना चाहिये।

अन्य उपचार

ऊपर के बताये गये प्रमुख उपचारों के अतिरिक्त कुछ अन्य उपचारों का भी प्रयोग किया जाता है। ये उपचार ऊपर के उपचारों के ही भाग माने जा सकते हैं। उदाहरण के लिये अक्षत, दूर्वा तथा ऋतुफल आदि। अक्षत एवं दूर्वा आदि जिन-जिन देवताओं के लिये विहित हैं उन्हें ही चढ़ाना चाहिये। दूर्वा और अक्षत की संख्या सौ से अधिक होनी चाहिये। भगवान् विष्णु की पूजा में अक्षत का प्रयोग, गणेश की पूजा में तुलसी का प्रयोग, देवी की पूजा में दूर्वा का प्रयोग और सूर्य की पूजा में बिल्वपत्र का प्रयोग न करें।

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम्।
न दूर्वया यजेद्देवीं बिल्वपत्रैर्न भास्करम्।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12)

इसी प्रकार ऋतुफल अर्पित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वे कीड़ों से युक्त न हों, अर्थात् वे सड़े-गले न हों।

फलं च कृमिसंयुक्तं प्रयत्नात्तद्विवर्जयेत्। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12)

देवताओं की पूजा में ग्राह्य पत्ते इस प्रकार हैं–तुलसी, मौलसिरी, चम्पा, कमलिनी, बेल, श्वेत कमल, दमन, मैनफल, कुशा, दूर्वा, नागबल्ली, ओंघा(अपामार्ग), विष्णुक्रान्ता, अगस्त्य तथा आँवले। इन पत्तों में से जो जिस देवताविशेष को ग्राह्य नहीं हैं उसका संकेत यथास्थान किया जायगा।

---

1. परन्तु बाजे बजाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शिव के मन्दिर में झल्लक(काँशे की करताल, झाँझ), सूर्य के मन्दिर में शंख, दुर्गा के मन्दिर में मधूरी या शुषिर वाद्य(छिद्रवाला वाद्यविशेष)-न बजे। इसी प्रकार ब्रह्मा के मन्दिर में नगाड़े और लक्ष्मी के मंदिर में घंटा नहीं बजायें (निर्णयसिन्धुः पृ 693)।

तुलसीबकुलोवृक्षश्चंपकश्चसरोजिनी।।
बिल्वकल्हारदमनास्तथामरुबकः कुशः।
दूर्वाहिवल्ल्यपामार्गविष्णुक्रान्तामुनिद्रुमाः।।
धात्रीयुतानामेतेषां पत्रैः कुर्य्यात्सुरार्चनम्। (मन्त्रमहोदधिः 22/93-95)

पत्तों की तरह ग्राह्य फलों की सूची इस प्रकार है – जामुन, अनार, नीबू, इमली, बिजौरा, केला, आँवला, बेर, आम तथा कटहल आदि।

जंबूदाडिमजंबीरतिंतिणीबीजपूरकाः।।
रंभाधात्री च बदरीरसालः पनसोपि च।
एषां फलैर्यजेद्देवं .....।। (मन्त्रमहोदधिः 22/95-96)

ऊपर बताये गये उपचारों की सामग्री अलग-अलग पात्रों में रखी जानी चाहिये। ये पात्र सोने, चाँदी, ताँबे, पीतल या मिट्टी के हो सकते हैं। परन्तु चन्दन को ताँबे के पात्र में नहीं रखना चाहिये। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही वस्तु-विशेष का प्रयोग करना चाहिये। जो वस्तु अपने पास नहीं हो, उसके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं और अपनी शक्ति के अनुसार जो मिल सकती हो, उनके प्रयोग में आलस्य, प्रमाद और संकीर्णता नहीं करनी चाहिये। उपचारों के अभाव में विकल्प के तौर पर अक्षत या फूल का प्रयोग करें अथवा उन उपचारों की मानसिक कल्पना कर उन्हें अर्पित करें।

पाद्यादिवस्त्वभावे तु तत्स्मरन्नक्षतान्क्षिपेत्। (मन्त्रमहोदधिः 22/71)
उपचारेषु सर्वेषु यत् किंचिद्दुर्लभं भवेत्।
तत् सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत्।।

(पुरश्चर्यार्णव, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1985 पृ. 225)

शिवपूजा की विशेषता

भगवान् शिव की पूजा-उपासना में एक रहस्य की बात यह है कि जहाँ एक ओर रत्नों से निर्मित लिंगों की पूजा में अपार समारोह के साथ राजोपचार आदि विधियों से विशाल वैभव का प्रयोग होता है, वहाँ सरलता की दृष्टि से केवल जल, अक्षत[1], बिल्वपत्र और मुखवाद्य (मुख से बम-बम की ध्वनि निकालने) से भी पूजा की परिपूर्णता मानी जाती है और सदाशिव की कृपा सहज उपलब्ध हो जाती है। इसीलिये वे आशुतोष[2] कहे गये हैं।

---

1. बिना टूटे हुए चावलों को सात बार धो देने से वह अक्षत कहलाता है। बिना धोये चावलों को नहीं चढ़ाना चाहिये।
2. 'आशु' का अर्थ है 'शीघ्र', 'तोष' का अर्थ है 'प्रसन्न'। अतः 'आशुतोष' का अर्थ हुआ शीघ्र प्रसन्न होनेवाला।

भगवान् शिव की पूजा में आशौच भी नहीं होता है। अर्थात् जननाशौच और मरणाशौच (सूतक एवं पातक) का शिव-पूजन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जबकि विष्णु आदि देवों की पूजा आशौच में नहीं करनी चाहिये (आचारेन्दुः पृ. 235)। यों तो पूर्व-संकल्पित या आरंभ किया हुआ पूजा या व्रत भी आशौच से प्रभावित नहीं होता, उसके कुछ अंगों को प्रतिनिधि द्वारा करवा दिया जाता है। परन्तु आशौच की अवस्था में शिवपूजा व्यक्ति स्वयं भी कर सकता है।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाऽपि कर्तनम्।
न त्वसंपूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्।।
सूतके मरणे चैव न दोषः परिकीर्तितः।

(आचारेन्दुः पृ. 56 एवं 235, तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 694 में लिंगपुराण का वचन)

निर्णयसिन्धुकार ने यहाँ पर शिवपूजा को न रोककर उसे प्रतिनिधि द्वारा करवाना चाहिये-ऐसा अर्थ किया है जो उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि प्रतिनिधि द्वारा तो नित्य की जानेवाली (या पूर्व-संकल्पित) किसी भी देव की पूजा करवायी जा सकती है, फिर शिवपूजा में क्या विशेषता है जिसे बताने के लिये लिंगपुराण का उपर्युक्त वचन उद्धृत किया गया है। आचारेन्दु में जहाँ उपर्युक्त श्लोक लिखा है वहीं पर अगली पंक्ति में 'आचारार्क' को उद्धृत करते हुए कहा है कि ऐसी अवस्था में विष्णुपूजा नहीं करनी चाहिये। पुनः धर्मसिन्धुकार ने (धर्मसिन्धुः पृ. 888) कहा है कि पार्थिव-शिवलिंगपूजन में आशौच नहीं होता। अतः निष्कर्ष यह है कि सूतक एवं पातक की स्थिति में पार्थिवपूजन या मानस-पूजन करे। मन्दिर में जाकर स्थापित लिंग आदि की पूजा न करे।

बृहद्धर्मपुराण में कहा गया है कि मात्र गुरु की मृत्यु पर दशाहतक शिवपूजा को रोक देना चाहिये। अन्य सभी प्रकार के सूतक-मृतक आदि आशौच में शिवपूजा नहीं रोकनी चाहिये।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम्।
.....।
सूतके मृतकेऽशौचे न त्यजेच्छिवपूजनम्।।
वर्जयित्वा दशाहन्तु महागुरुनिपातने। (बृहद्धर्म. पु., मध्यखण्ड, 57/67, 68)

तिलक वा त्रिपुण्ड्र के अभाव में पूजा प्रभावोत्पादक नहीं होती। शिवपूजा तो बिना भस्म, त्रिपुण्ड्र एवं रुद्राक्ष के संभव ही नहीं है।[1] अतः यहाँ पर संक्षेप में तिलक एवं त्रिपुण्ड्र आदि की विधि बतायी जा रही है। अलग-अलग सम्प्रदायों में अलग-अलग ढंग से तिलक, पुण्ड्र अथवा त्रिपुण्ड्र लगाने की विधि होती है। यहाँ पर हम सर्वसाधारण विधि ही लिखेंगे।

---

1. **विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः।।**
तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 694 तथा धर्मसिन्धुः पृ. 628)

तिलक, भस्म एवं त्रिपुण्ड्र

प्रातःस्नान के उपरान्त ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र अथवा तिलक लगाया जाता है। प्रातःकाल मिट्टी से और होम के बाद भस्म से पुण्ड्र करे। मिट्टी या गोपीचन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र, भस्म से त्रिपुण्ड्र और चन्दन से दोनों प्रकार का तिलक कर सकते हैं। किन्तु उत्सव की रात्रि में सर्वांग में चन्दन लगाना चाहिये।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यात् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम्।
उभयं चन्दनेनैव अभ्यङ्गोत्सवरात्रिषु।।

(आचारेन्दुः पृ. 62 तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 21)

तिलक या त्रिपुण्ड्र के बिना सत्कर्म सफल नहीं हो पाते।[1] तिलक बैठकर लगाना चाहिये। अपने-अपने आचार के अनुसार मिट्टी, चन्दन और भस्म-इनमें से किसी के द्वारा तिलक लगाना चाहिये।[2] किन्तु भगवान् पर चढ़ाने से बचे हुए चन्दन को ही लगाना चाहिये। अपने लिए नहीं घिसना चाहिये। अँगूठे से नीचे से ऊपर की ओर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाकर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये।

गोपीचन्दन, तुलसी की जड़ की, समुद्र के तट की, गंगातीर की और बाल्मीक की मिट्टी से ललाट, पेट, छाती तथा कण्ठ आदि बारह स्थानों में तिलक करें। वैष्णवों को शुक्लपक्ष में केशव आदि नामों से और कृष्णपक्ष में संकर्षण आदि नामों से तथा शिर में 'वासुदेव' इस नाम से तिलक करना चाहिये। उदाहरण के लिये '**ॐ केशवाय नमः**' से ललाट में '**ॐ नारायणाय नमः**' से पेट, '**ॐ माधवाय नमः**' से छाती, '**ॐ गोविन्दाय नमः**' से कण्ठ में, '**ॐ विष्णवे नमः**' से पेट के दक्षिण भाग में पीठ की ओर, '**ॐ मधुसूदनाय नमः**' से दाहिने बाहु के बीच में, '**ॐ त्रिविक्रमाय नमः**' से दाहिने कान के मूल में, '**ॐ वामनाय नमः**' से पेट के बायीं ओर पीठ की तरफ, '**ॐ श्रीधराय नमः**' से बायीं भुजा के मध्य में, '**ॐ हृषीकेशाय नमः**' से बायें कान के मूल में, '**ॐ पद्मनाभाय नमः**' से पीठ के निचले हिस्से में, '**ॐ दामोदराय नमः**' से ककुत में और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' से सिर में तिलक करे। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि एवं कृष्ण इन बारह नामों से उपर्युक्त

---

1. **सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिसेवनम्। तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्।।**
(आचारेन्दुः पृ. 62)
ललाटे तिलकं कृत्वा संध्याकर्म समाचरेत्। अकृत्वा भालतिलकं तस्य कर्म निरर्थकम्।।
(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 39)

2. **मृत्तिका चन्दनं चैव भस्म तोयं चतुर्थकम्। एभिर्द्रव्यैर्यथाकालमूर्ध्वपुण्ड्रं भवेत्सदा।।**
(वीरमि. आह्निकप्रकाशः पृ. 251)

बारह अंगों में तथा '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' से सिर में पुण्ड्र धारण करे। द्रव्याभाव में तिलक मात्र जल से भी लगाया जा सकता है। दोपहर से पहले जल मिलाकर भस्म लगाना चाहिये। दोपहर के बाद जल न मिलावें(**मध्याह्नात् प्राक् जलाक्तं तु परतो जलवर्जितम्।** नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 40 में देवीभागवत का कथन तथा आचारेन्दुः पृ. 66)। मध्याह्न में चन्दन मिलाकर और शाम को सूखा ही भस्म लगाना चाहिये(**प्रातः ससलिलं भस्म मध्याह्ने गन्धमिश्रितम्। सायाह्ने निर्जलं भस्म एवं भस्म विलेपयेत्।।** देवीभागवत् 11/9/43)।

दाहिनें अंगूठे से ललाट पर उर्ध्वपुण्ड्र करने के बाद मध्यमा और अनामिका से बायीं ओर से प्रारम्भ कर दाहिनी ओर को भस्म लगावें। इसके बाद अँगूठे से दाहिनी ओर से प्रारम्भ कर बायीं ओर को लगावें।

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः।
अतिस्वल्पमनायुष्यमतिदीर्घं तपोहरम्।। (आचारेन्दुः पृ. 66)

इस प्रकार तीन रेखाएँ खिंच जाती हैं। तीनों अँगुलियों के मध्य का स्थान रिक्त रखें।

निरन्तरालं यः कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं स नराधमः। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 40)

नेत्र त्रिपुण्ड्र के रेखाओं की सीमा हैं, अर्थात् बायें नेत्र से दाहिने नेत्रतक ही भस्म की रेखाएँ हों। इससे अधिक लम्बी और अति छोटी होना भी हानिकर है। इस प्रकार रेखाओं की लम्बाई छः अंगुल होती है। यह विधि ब्राह्मणों के लिये है। क्षत्रियों को चार अंगुल, वैश्यों को दो अंगुल और शूद्रों को एक ही अंगुल का त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये।

षडङ्गुलप्रमाणं तु ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम्।
नृपाणां चतुरङ्गुल्यं वैश्यानां द्व्यङ्गुलं तथा।।
शूद्राणामथ सर्वेषामेकाङ्गुल्यं त्रिपुण्ड्रकम्। (आचारेन्दुः पृ. 66)

भस्म लेकर ललाट, हृदय, नाभि, गला, कन्धा, बाहु की सन्धि, पीठ और शिर में शिवमंत्रों से, गायत्री से अथवा प्रणव से त्रिपुण्ड्र करें(धर्मसिन्धुः पृ. 539)। ललाट के अलावा अन्यत्र त्रिपुण्ड्र लगाने के लिये मध्य की तीन अंगुलियों का भी प्रयोग हो सकता है।

मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिण (वा वाम) करस्य च।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विद्वान्सर्वकर्मसु सर्वदा।। (आचारेन्दुः पृ. 66)

त्रिपुण्ड्र लगाने की सर्वसाधारण विधि इस प्रकार है। अग्निहोत्र या साधू-संत के धूनों से भस्म को बायें हाथ में लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक कर अभिमंत्रित कर लेना चाहिये। मंत्र इस प्रकार है- **पिप्पलाद ऋषिः। रुद्रो देवता। गायत्री छन्दः। भस्माभिमन्त्रणे विनियोगः। ॐ अग्निरितिभस्म। ॐ वायुरिति भस्म। ॐ जलमिति भस्म। ॐ स्थलमिति भस्म। ॐ व्योमेति भस्म। ॐ सर्वं ह वा इदं भस्म। ॐ मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि इति।**(आचारेन्दुः पृ. 66)

अभिमंत्रित करने के बाद जल मिलाकर ललाट आदि उपर्युक्त स्थानों पर सामान्यतया '**ॐ नमः शिवाय**' मंत्र से त्रिपुण्ड्र लगायें। अथवा निम्नलिखित भिन्न – भिन्न मंत्र बोलते हुए भिन्न – भिन्न स्थानों में भस्म लगाये।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति भुजायाम्। ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति हृदये।

(नित्यकर्म – पूजाप्रकाश पृ. 41)

पूजा की तैयारी

पूजा से पहले पूजा की सामग्री एकत्र की जाती है। पूजन की किस वस्तु को किधर रखना चाहिये, इस बात का भी शास्त्र ने निर्देश दिया है। इसके अनुसार वस्तुओं को यथास्थान सजा देना चाहिये।

बायीं ओर – 1. सुवासित जल से भरा उदकुम्भ (जलपात्र)[1], 2. घंटा[2], 3. धूपदानी[3] और तेल का दीपक।[4] इसके अतिरिक्त व्यजन, छत्र तथा चामर आदि भी रखे जा सकते हैं (मन्त्रमहोदधिः 21/76)।

दायीं ओर – 1. घृत का दीपक और सुवासित जल से भरा शंख[5] , 2. अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क एवं पुनराचमनीय के पाँचों पात्र तथा 3. पुष्पादि। (मन्त्रमहोदधिः 21/75)

अर्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्काचमस्य च।
पञ्चपात्राणि पुष्पादीन्स्थापयेत्स्वीयदक्षिणे।।

सामने – कुंकुम (केसर) और कपूर के साथ घिसा गाढ़ा चन्दन तथा भगवान् के आगे चौकोर जल का घेरा डालकर नैवेद्य की वस्तु रखें।

गृहस्थों को प्रतिदिन पंचदेव की पूजा अवश्य करनी चाहिये। यदि वेद के मंत्र अभ्यस्त न हों, तो आगमोक्त मंत्र से, यदि वे भी अभ्यस्त न हों तो नाममंत्र से और यदि यह भी सम्भव न हो तो विना मंत्र के ही फूल, जल, चन्दन आदि चढ़ाकर पूजा करनी चाहिये।[6]

---

1. '**सुवासितजलैः पूर्णं सव्ये कुम्भं प्रपूजयेत्।**' (नित्यकर्म – पूजाप्रकाश पृ. 115)
2. '**घण्टां वामदिशि स्थिताम्।**' (नित्यकर्म – पूजाप्रकाश पृ. 115)
3. '**वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।**' (आचारेन्दुः पृ. 166)
4. '**घृतदीपो दक्षिणतस्तैलदीपस्तु वामतः।**' (आचारेन्दुः पृ. 166))
5. '**शङ्खमद्भिः पूरयित्वा प्रणवेन च दक्षिणे।**' (नित्यकर्म – पूजाप्रकाश पृ. 115)
6. **अयं विनैव मन्त्रेण पुण्यराशिः प्रकीर्त्तितः। स्यादयं मन्त्रयुक्तश्चेत् पुण्यं शतगुणोत्तरम्।।**

(वीरमि. आह्निकप्रकाशः पृ. 383)

शास्त्रों में पूजा को हजार गुना अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने के लिये एक उपाय बतलाया गया है। वह उपाय है, मानसपूजा। इसे पूजा से पहले करके फिर बाह्य वस्तुओं से पूजा करें।

कृत्वादौ मानसीं पूजां ततः पूजां समाचरेत्। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 116)

पहले पुष्प-प्रकरण में शास्त्र का एक वचन उद्धृत किया गया है, जिसमें बतलाया गया है कि मनःकल्पित यदि एक फूल चढ़ा दिया जाय तो करोड़ों बाहरी फूल चढ़ाने के बराबर होता है। इसी प्रकार मानस चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य भी भगवान् को करोड़गुना अधिक संतोष दे सकेंगे। अतः मानसपूजा का बहुत ही महत्त्व है।[1]

देवार्चन संबंधी कुछ विवाद

शालग्राम, लिंग अथवा भगवान् की मूर्ति की पूजा-अर्चना संबंधी अनेक भ्रान्तियाँ लोगों में प्रचलित हैं। जिनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जायगी। सबसे प्रमुख विवाद इस बात को लेकर होता है कि स्त्री एवं शूद्र आदि को मूर्ति, लिंग या शालग्राम की स्वयं द्वारा पूजा का अधिकार है या नहीं, इनके द्वारा इन मूर्तियों को स्पर्श किया जाना चाहिये अथवा नहीं।

उपर्युक्त विवाद या भ्रम का आधार शास्त्रों के परस्पर विरुद्ध वचन हैं। परस्पर विरुद्ध वचनों का कारण या तो समय के साथ शास्त्रों में साम्प्रदायिक तत्त्वों का प्रवेश कर जाना है अथवा उन वचनों के सही अर्थों के ज्ञान का अभाव है। हम यहाँ पर शास्त्रों के कुछ परस्पर विरोधी वचनों का उल्लेख कर इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

शालग्राम-पूजा के अपवाद के सन्दर्भ में कहा गया है कि ब्राह्मणों को चार, क्षत्रियों को तीन, वैश्यों को दो तथा शूद्रों को एक शालग्राम शिला की पूजा करनी चाहिये।

चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः।
वैश्यैर्द्वावेव सम्पूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 20 में हेमाद्रि का वचन)

इसी प्रकार वहीं पर आगे कहा गया है कि -

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीशूद्राणामथापि वा।
शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति नान्येषां तु कदाचन।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 20 में स्कंदपु. का वचन)

अर्थात् - शालग्राम की पूजा में केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री एवं शूद्र का अधिकार है- अन्यों का नहीं। यहाँ अन्यों का अर्थ वर्णसंकर आदि है।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शालग्राम-शिला की पूजा में चारों वर्णों एवं

1. मानसपूजा की विधि इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगी।

स्त्रियों का अधिकार है। उपर्युक्त श्लोकों का कई लोग यह अर्थ लगाते हैं कि स्त्री-शूद्रों को बिना स्पर्श किये हुए शालग्राम की पूजा करना या अन्यों से करवाना चाहिये। इस तरह का अर्थ उचित प्रतीत नहीं होता।

ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि शूद्र एवं स्त्रियों द्वारा पूजित लिंग अथवा विष्णु की प्रतिमा अथवा शालग्राम-शिला को प्रणाम करनेवाले का न तो कोई प्रायश्चित्त है और न ही उसका उद्धार हो सकता है तथा वह अपने कुल के साथ कल्पभर नरक भोगता है।

यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः।
तस्येह निष्कृतिर्नास्ति प्रायश्चित्तशतैरपि।। (बृहन्नारदीय पु.* 14/54)
योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः।
स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं व्रजेत्।। (बृहन्ना. पु.* 14/58)

वहीं पर आगे कहा गया है कि मंत्रों के जानकर द्वारा विधिपूर्वक प्रतिष्ठित लिंग का स्पर्श स्त्री एवं शूद्र न करें।

यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि।
तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेत्।। (बृहन्ना. पु.* 14/59)

पुनः यह भी कहा गया है कि स्त्री, संस्काररहित (अथवा उपनयनरहित) एवं शूद्र को विष्णु एवं शिव को स्पर्श का अधिकार नहीं है। इसी प्रकार पतितों को भी स्पर्श नहीं करना चाहिये, अन्यथा नरक जाना पड़ेगा।

स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर।
स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य च।।
शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा।
केशवं च शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमाप्नुयुः।। (बृहन्ना. पु.* 14/60, 64)

उपर्युक्त परस्पर विरोधी शास्त्र वचनों, कि स्त्री-शूद्र को पूजा का अधिकार है तथा उन्हें प्रतिमा या लिंग को स्पर्श का अधिकार नहीं है, में कुछ लोग समन्वय इस प्रकार करते हैं। स्त्री एवं शूद्र को प्रतिमादि को विना स्पर्श किये हुए ही पूजा करनी चाहिये। परन्तु इस प्रकार का समाधान ठीक प्रतीत नहीं होता।

कुछ लोग विरोधी वाक्यों के समन्वय के लिये 'स्त्री-शूद्र' पद का अर्थ अदीक्षित एवं मद्यपान करनेवाला 'स्त्री-शूद्र' लगाते हैं। अतः जो स्त्री-शूद्र दीक्षित, संस्कारित एवं 'सत्स्त्रीशूद्र'

---

* बृहन्नारदीय पुराण के ये श्लोक मूल श्लोक से थोड़े भिन्न हैं। यहाँ पर दिये गये श्लोक 'वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः' के पृ. 20 से लिये गये हैं।

हैं वे स्पर्श करके भी पूजा कर सकते हैं। 'वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः (पृ. 21) में इसी तरह का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि सत्स्त्रीशूद्र प्रतिष्ठित मूर्ति एवं लिंग की स्पर्श-युक्त पूजा कर सकते हैं। उनके लिये निषेध केवल शालग्राम तथा देवता एवं ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति एवं लिंग की पूजा है।

अत्र प्रतिष्ठितमूर्त्तिलिङ्गपूजा सत्स्त्रीसच्छूद्रैः स्पर्शवत्यपि कार्या।
स्पर्शनिषेधस्तु शालग्रामदेवर्षिप्रतिष्ठितमूर्तिलिङ्गस्पर्शनिषेधपर इति शिष्टाः।

(वीरमि. पूजाप्रकाशः पृ. 21)

'आचारेन्दुः' में भी इसी तरह की बात कही गयी है। वहाँ लिंगपुराण का वचन उद्धृत करते हुए कहा गया है कि भगवान् शिव की पूजा ब्राह्मण[1] शुचि अथवा अशुचि किसी भी रूप में कर सकता है परन्तु स्त्री एवं शूद्र का करस्पर्श वज्र के समान दुःसह होता है।

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि।
स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रादपि सुदुःसहः।। (आचारेन्दुः पृ. 194)

आचारेन्दुः में 'स्त्री-शूद्र' पद का यहाँ पर अर्थ 'असत्स्त्रीशूद्र' लगाया है। अर्थात् 'सत्स्त्री एवं 'सच्छूद्र' भी स्पर्श कर सकते हैं। इसी प्रकार मंत्र दीक्षित 'सत्स्त्रीशूद्र' भी स्पर्शसहित पूजा कर सकते हैं।

विष्णुमन्त्रदीक्षितादिसत्स्त्रीशूद्रैस्तु स्पर्शवत्यपि पूजा कार्येत्याहुः।

(आचारेन्दुः पृ. 194)

धर्मसिन्धुः (पृ. 623) में कहा गया है कि पुराण-प्रसिद्ध जीर्ण-लिंग का पूजन स्त्री-शूद्र भी कर सकते हैं। परन्तु नये स्थापित लिंग का स्पर्श स्त्री-शूद्र न करें।[2] अतः उपर्युक्त विरोधी वचनों का धर्मसिन्धुकार ने उपर्युक्त प्रकार से समाधान प्रस्तुत किया है। अर्थात् पुराण-प्रसिद्ध लिंगों की पूजा सभी वर्ण के लोग कर सकते हैं। स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। परन्तु नवीन स्थापित लिगों की नहीं।

परन्तु धर्मसिन्धु में यह भी कहा गया है कि शालग्राम और बाणलिंग की ही पूजा में

---

1. 'ब्राह्मण' वही है जो ब्राह्मणोचित कर्त्तव्यों का पालन करता है- जैसे त्रिकाल स्नान-संध्या करना, मद्यमांसादि से रहित होना, शौच-संतोषादि नियमों का पालन करना इत्यादि। अतः यहाँ पर 'अशुचिब्राह्मण' भी स्त्री-शूद्रादि से पवित्र होगा-ऐसी मान्यता पूर्वकल्पित है। वास्तव में अगर ब्राह्मण भी पतित है तो वह पूजा का अधिकारी नहीं है। देखें ऊपर का श्लोक (वृह. पु. 14/64))

2. **पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गं स्त्रीशूद्रैरपि पूज्यम्।**
नूतनस्थापितं लिङ्गं स्त्री शूद्रो वापि न स्पृशेत्। (धर्मसिन्धुः पृ. 623)

(स्त्री-शूद्र का) निषेध है, प्रतिमा आदि में नहीं। सब देवताओं की प्रतिमाएँ सब वर्णों के लिये पूज्य हैं और मणियों के बनाये हुए लिंग भी सभी के पूजा-योग्य हैं।

शालग्रामबाणयोरेव स्पर्शननिषेधो न तु प्रतिमादौ।
सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः।
लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च।। (धर्मसिन्धुः पृ. 626-627)

इस प्रकार हम यहाँ भी यही पाते हैं कि शालग्राम-शिला एवं प्रतिष्ठित लिंगादि में स्त्री-शूद्र का अधिकार नहीं है। वहाँ आगे यह कहा गया है कि मद्य नहीं पीनेवाले दीक्षायुक्त शूद्र शालग्रामशिला का पूजन ब्राह्मण के द्वारा करावें।

दीक्षायुक्तैस्तथा शूद्रैर्मद्यपानविवर्जितैः।
कर्तव्यं ब्राह्मणद्वारा शालग्रामशिलार्चनम्। (धर्मसिन्धुः पृ. 628)

'निर्णयसिन्धु' में 'शिवसर्वस्व' को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे में तत्पर हो देवताओं के आदि मुझ जगत्पति के लिंग का जो पूजन करता है, उस पर प्रसन्न होकर उत्तमोत्तम शुभलोकों को देता हूँ।'

यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम्।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः।
तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमाम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 674)

वहीं पर आगे कहा गया है कि -'हे प्रिये, जो शूद्र अपने नित्यकर्मों को करता है, हे चन्द्रखण्डविभूषिते, मैं उसकी पूजा को ग्रहण करता हूँ।'

शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये।
तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 675)

बृहन्नारदीय पुराण के उपर्युक्त स्त्री-शूद्र को स्पर्श-पूजा से वंचित करनेवाले श्लोकों से इन वाक्यों को संगत बनाने के लिये निर्णयसिंधुकार ने कहा है कि ये वचन पुराण-प्रसिद्ध जीर्ण-लिंगों को व्यक्त करते हैं, नूतन स्थापित लिंगों को नहीं।

निर्णयसिन्धु में विष्णु की स्थापना के अधिकारियों की चर्चा करते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि-'चारों वर्णों के लोग सुख की इच्छा के लिये विष्णु की स्थापना करें।'

चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः। (निर्णयसिन्धुः पृ. 674)

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि विष्णु की प्रतिष्ठा में चारों वर्णों का अधिकार है। जबकि वहीं पर आगे लिखा है कि प्रतिष्ठा में शूद्रादि को अधिकार नहीं है। हे जनेश्वर! विष्णु या शंकर के स्थापन में स्त्रियों को, अनुपनीतों (असंस्कारित लोगों) को और शूद्रों को अधिकार नहीं है।

प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः।
स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नरेश्वर।
स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य वा।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 677)

बृहद्धर्म पुराण में कहा गया है कि-

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः स्त्री चान्त्यजोऽपि च।
पराङ्मुखः शिवार्च्चायां योऽर्च्चयेद्देवतागणम्।।
विफलं तस्य तत्सर्वं यथौषधममन्त्रितम्।। (बृहदधर्मपुराण म. ख./57/62-63)

अर्थात्- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री एवं अन्त्यज- ये सभी लोग शिवपूजा से विमुख हो अन्य देवों की पूजा करते हैं तो उनकी पूजा उसी प्रकार विफल हो जाती है जिस प्रकार मंत्र के बिना औषधि।

इस श्लोक में भी यह भाव निहित है कि चारों वर्णों, स्त्री तथा अन्त्यज सभी को शिव की अर्चना करनी चाहिये।

इसी प्रकार पार्थिवलिंग की पूजा के प्रकरण में 'वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः' में कहा गया है कि स्त्री एवं शूद्र शिव की पूजा स्वयं पार्थिवलिंग में करें।

स्त्रीशूद्रैश्च प्रकर्तव्यं पार्थिवे तु शिवेऽर्चनम्।
पार्थिवे शिवे शूद्राणां साक्षात्पूजनाधिकारः। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 201)

पार्थिवलिंग की पूजा में सभी का अधिकार स्वीकार किया गया है।

उपर्युक्त सभी विचारों पर दृष्टिपात करें तो निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं। लिंग एवं शालग्राम की पूजा में भी सभी वर्णों एवं स्त्रियों का अधिकार है। लोगों का यह तर्क कि स्त्री एवं शूद्र शालग्राम या लिंग को विना स्पर्श किये पूजा करें अथवा अन्यों से करवायें उचित नहीं है। इस प्रकार का तर्क साम्प्रदायिक संकीर्णता का समर्थन करता है। कुछ लोग स्त्री-शूद्र का अर्थ अदीक्षित एवं असंस्कारित स्त्री-शूद्र लगाकर उनके द्वारा स्पर्शयुक्त पूजा का निषेध बताते हैं तथा संस्कारित की नहीं। यह समाधान ठीक प्रतीत होता है। परन्तु असंस्कारित एवं अदीक्षित द्विजाति के लोगों द्वारा भी लिंग एवं शालग्राम को स्पर्श नहीं करना चाहिये। (देखें ऊपर का सन्दर्भ, बृह. पु. 14/60, 64)

परन्तु शालग्राम एवं देवता तथा ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित लिंग के स्पर्श का निषेध 'वीरमित्रोदयः' ने स्वीकार किया है जो ठीक नहीं है। क्योंकि 'धर्मसिन्धुः(पृ. 623)' में कहा गया है कि पुराणप्रसिद्ध जीर्ण-लिंग का पूजन स्त्री-शूद्र भी कर सकते हैं। यह स्पष्ट है कि पुराण-प्रसिद्ध लिंग देवता अथवा ऋषियों द्वारा ही प्रतिष्ठित हैं। परन्तु धर्मसिंधुकार ने नूतन स्थापित लिंग, शालग्राम एवं बाणलिंग की स्पर्शयुक्त पूजा का निषेध किया है जबकि किसी भी प्रकार की

प्रतिमाओं में उनका निषेध नहीं किया है। साथ ही मणियों के बनाये हुए लिंग भी सभी द्वारा पूज्य हैं। धर्मसिंधुकार का बाणलिंगादि का स्पर्शयुक्त पूजानिषेध भी उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि निर्णयसिन्धुकार ने (पृ. 674 पर) कहा है कि 'जो ब्राह्मणशूद्रादि मेरे में तत्पर हो मेरे लिंग का पूजन करता है उस पर मैं प्रसन्न होकर शुभ लोकों को देता हूँ।' परन्तु साथ ही निर्णयसिन्धुकार साम्प्रदायिक संकीर्णता का अनुमोदन करने हेतु इस वाक्य की पुराण – प्रसिद्ध लिगों के संदर्भ में व्याख्या करता है जो उचित नहीं है।

स्कंदपुराण में पैजवन नामक शूद्र को गालव ऋषि उपदेश देते हुए कहते हैं कि 'जिनके घर में शुभ शालग्राम – शिला का कोमल तुलसीदलों द्वारा पूजन होता है, वहाँ यमराज अपना मुँह नहीं दिखाते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सच्छूद्रों को भी शालग्राम – शिला के पूजन का अधिकार है।' गालवजी के ऐसा कहने पर पैजवन ने पूछा – 'ब्रह्मन्! आप वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। सुना जाता है कि स्त्री और शूद्रादि के लिये शालग्राम – शिला के पूजन का निषेध है। अतः मेरे जैसा मनुष्य किस प्रकार शालग्राम का पूजन करे?'

गालवजी कहते हैं कि – 'मानद! शूद्रों में केवल असत् शूद्र के लिये शालग्राम – शिला का निषेध है। स्त्रियों में भी पतिव्रता स्त्रियों के लिये उसका निषेध नहीं किया गया है।' (संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक, ब्राह्मखण्ड – चातुर्मास्य – माहात्म्य पृ. 496)

इसी प्रकार स्कंदपुराण में एक स्थल पर यह भी कहा गया है कि – 'शूद्र हो या ब्राह्मण, म्लेच्छ हो या और कोई पापात्मा; जो मनुष्य शिव की दीक्षा लेकर षडक्षरमन्त्र से भक्तिपूर्वक एक भी फूल शिवलिंग पर चढ़ा देता है, वह उसी गति को प्राप्त होता है, जिसे बड़े – बड़े यज्ञकर्ता पाते हैं।' यहाँ पर जो कथन किया गया है वह किसी लिंगविशेष के सन्दर्भ में नहीं है, बल्कि यह सामान्य कथन है। अर्थात् यह कथन सभी प्रकार के लिंगों पर लागू होता है। (संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक, नागरखण्ड, उत्तरार्ध पृ. 942)

'शिवपुराण' में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर – कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकार के अनुसार वैदिक अथवा तांत्रिक मंत्र से सदा आदरपूर्वक शिवलिंग की पूजा करे। महर्षियों! अधिक कहने से क्या लाभ? शिवलिंग का पूजन करने में स्त्रियों का तथा अन्य सब लोगों का भी अधिकार है।' यहाँ पर सामान्य रूप से लिंगपूजा का कथन है न कि केवल पार्थिवलिंग पूजा संबंधी।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः।
पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम्।।
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः।
अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः।। (शिवपुराण वि. सं. 21/39 – 40)

रुद्रोपनिषद् में कहा गया है कि चाण्डाल भी लिंगार्चन कर ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ हो जाता है।

शिवलिङ्गार्चनयुतश्चाण्डालोऽपि स एव ब्राह्मणाधिको भवति।

यहाँ पर निहितार्थ यह है कि चाण्डाल भी लिंगार्चन कर सकता है। यहाँ इस बात की चर्चा नहीं है कि वह पार्थिवलिंग की ही पूजा करे।

गीता में कहा गया है कि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (भगवद्गीता 9/26)

यहाँ 'यः' पद के प्रयोग का भाव यह है कि किसी भी वर्ण, आश्रम और जाति का कोई भी मनुष्य पत्र, पुष्प, फल, जल आदि मेरे अर्पण कर सकता है। अर्थात् भगवान् की पूजा कर सकता है। (देखें श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 334-335)

शास्त्रों की अनेक कथाओं में शूद्रों द्वारा मंदिर में स्थापित लिंगों की पूजा करते हुए दिखाया गया है। उदाहरण के लिये लोमश ऋषि, कणप्प तथा किरात आदि की कथाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। ये तीनों कथाएँ इसी पुस्तक में दी गयी हैं, कृपया उन्हें देखें।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि स्त्री एवं शूद्र आदि को लिंगपूजा अथवा शालग्राम की स्पर्शयुक्त पूजा से सदैव वर्जित करना उचित नहीं है और न ही शास्त्र-सम्मत है। वर्जना की परम्परा धार्मिक संकीर्णता से जन्मी हुई है न कि शास्त्रीय आधार पर। बृहन्नारदीय पुराण के उपर्युक्त उद्धरणों जैसे साम्प्रदायिक वाक्य कालान्तर में ग्रन्थों में घुस गये फलस्वरूप इतिहास में धार्मिक तनाव उत्पन्न हो गये। आज भी बहुत से सम्प्रदायों में ब्राह्मण को ही प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा का अधिकार दिया जाता है। जबकि कुछ सम्प्रदायों में सभी वर्णों के लोगों को केशव एवं शिवलिंग की पूजा का अधिकार दिया जाता है।

भगवान् की पूजासंबंधी दूसरी शंका प्रायः यह की जाती है कि पूजा की शास्त्रीय विधि क्यों मानी जाय। अर्थात् शास्त्र के नियमों के पालन-पूर्वक पूजा क्यों की जाय। उदाहरण के लिये मद्य पीनेवाले को पूजा का अधिकार नहीं है। नैवेद्य में मांस, मदिरा, लहसुन, प्याज आदि वर्जित पदार्थों का उपयोग नहीं हो इत्यादि। तर्क में लोग यह कहते हैं कि कणप्प तथा किरात जैसे भक्त न तो पूजाविधि जानते थे और न ही उन्होंने उचित पदार्थों से शिव की पूजा की। बल्कि वर्जित मांसादि से पूजा की। फिर भी उन्हें भगवान् की कृपा प्राप्त हुई। अतः तर्क यह दिया जाता है कि पूजा भावनासापेक्ष है ग्रन्थविधि के सापेक्ष नहीं। तो फिर पूजा के लिये ग्रन्थों में बतायी विधि पर क्यों निर्भर करें।

शास्त्रों में भक्ति एवं पूजा दो तरह की बतायी गयी है- वैधी एवं प्रेमा। अर्थात् शास्त्रविधि से प्रेरित तथा मनोनुराग द्वारा प्रेरित। यह सत्य है कि वैधी-भक्ति या पूजा बिना अनुराग के हो तो वह प्रभावी

नहीं होती। गीता में भी कहा गया है कि "बिना श्रद्धा या भक्ति के हवन, दान, तप, आदि सभी शुभकर्म 'असत्' कहा जाता है, इसलिये वह न तो इस लोक में और न परलोक में लाभदायक है।"

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।। (गीता 17/28)

इसी प्रकार कहा गया है कि अगर व्यक्ति भक्तिरहित हो भगवान् शिव को अपना सब कुछ अर्पित कर दे तो भी उसको उसका फल नहीं मिलता।

सर्वस्वमपि यो दद्यात् शिवे भक्तिविवर्जितः।
न तेन फलभागी स्याद् भक्तिरेवात्र कारणम्।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 221)

जबकि प्रेमाभक्ति अनुराग एवं श्रद्धायुक्त होने के कारण शास्त्र विरोधी होने पर भी फल देनेवाली होती है। वैधी – भक्ति का लक्ष्य भगवान् के प्रति प्रबल भक्ति या अनुराग प्राप्त करना ही होता है। जब व्यक्ति में प्रबल भगवद्प्रेम पैदा हो जाता है तब वह शास्त्रों के नियमों में बँधा नहीं रह सकता और न ही बंधे रहने की आवश्यकता है। परन्तु जबतक प्रबल अनुराग नहीं पैदा हुआ है तबतक वैधी – भक्ति एवं पूजा का तिरस्कार व्यक्ति को नहीं करना चाहिये क्योंकि मनमाने ढंग से पूजा आदि करने से सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था नहीं चल सकती, न ही मनमाने ढंग से पूजा करने पर भगवद्कृपा प्राप्त हो सकती है और न ही भगवान् के प्रति प्रबल अनुराग ही प्राप्त हो सकता है। शास्त्र – विहित कर्म करने से ही चित्त की शुद्धि होती है क्योंकि व्यक्ति अपने को शास्त्र की मर्यादा में ढालता है, अपनी अहं – बुद्धि को वह दूर रखने का प्रयास करता है, अन्यथा वह शास्त्र की मर्यादा का पालन नहीं कर सकता। चित्त की शुद्धि होने से भगवान् के प्रति अनुराग पैदा होता है।[1]

सभी धार्मिक क्रियाओं का लक्ष्य भगवान् के प्रति परमप्रेम की प्राप्ति होता है। प्रेम की प्राप्ति के बाद व्यक्ति अपने प्रेम के भावों से संचालित हो भगवान् के प्रति व्यवहार करता है, वह उस अवस्था में शास्त्रों की मर्यादा से ऊपर उठ जाता है। अतः ऐसे भगवद्प्रेमी भक्तों के व्यवहार से हमें भ्रमित होकर शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।[2] जिन भक्तों की हम कहानियाँ पढ़

1. शास्त्रीय विधि के यन्त्रवत् पालन करने मात्र से ईश्वर की कृपा नहीं होती। शास्त्र के वचन ईश्वरीय आदेश समझकर निष्ठापूर्वक पालन करने पर ईश्वर की कृपा अवतरित हो पूजक के चित्त को शुद्ध बनाती है, फलस्वरूप शुद्ध अन्तःकरण से उसके द्वारा की जानेवाली पूजा का फल ईश्वर प्रेम या भक्ति की प्राप्ति होती है। विधिपूर्वक यन्त्रवत् पूजा से चित्त शुद्ध नहीं होता, चित्त तो ईश्वर की कृपा से शुद्ध होता है। ईश्वर की कृपा अवतरित होने के लिये ही निष्ठापूर्वक ईश्वरीय आदेशों(शास्त्रीय विधियों) के पालन – पूर्वक पूजा – अर्चना की जाती है। जब हम ईश्वर या ऋषियों द्वारा उपदिष्ट शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं तो ईश्वर प्रसन्न हो हम पर कृपा करता है।

2. गीता के अनुसार शास्त्रीय विधि से हटकर मनमाने ढंग से की जानेवाली उपासना, पूजा तथा तप आदि तामसिक पूजा या उपासना या तप कहलाता है। (भगवद्गीता अध्याय 17/1 – 6)

कर भ्रमित होते हैं उन लोगों के पूर्वजन्मों के कर्मों के फलस्वरूप उनमें अनायास ही भगवद् अनुराग का जन्म हो जाता है।

पुनः नारदमहापुराण (पू. ख. अधयाय 67) में पाँच प्रकार की पूजा बतायी गयी है- आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी। रोगादि से युक्त मनुष्य न स्नान करे, न जप करे और न पूजन ही करे। आराध्यदेव की पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डल का दर्शन एवं प्रणाम करके मंत्र-स्मरणपूर्वक उनके लिये पुष्पांजलि दे। फिर जब रोग निवृत्त हो जाय, तो स्नान और नमस्कार करके गुरु की पूजा करे और उनसे प्रार्थना करे- 'जगन्नाथ! जगत्पूज्य! दयानिधे! आपके प्रसाद से मुझे पूजा छोड़ने का दोष न लगे।' तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणों का भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदि से संतुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत् भगवान् की पूजा करे। यह 'आतुरी पूजा' कही गयी है।[1]

सूतक दो प्रकार का कहा गया है- जातसूतक और मृतसूतक। दोनों ही सूतकों में एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मन से ही भगवान् का पूजन और मन से ही मंत्र का जप करे। फिर सूतक के बीत जाने पर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणों का पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदा की भाँति पूजाक्रम प्रारम्भ कर दे। इस प्रकार की पूजा 'सौतिकी पूजा' कही गयी है।

तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा संध्यां समाहितः।
मनसैव यजेद् देवं मनसैव जपेन्मनुम्।।
निवृत्ते सूतके प्राग्वत् सम्पूज्य च गुरुं द्विजान्।
तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत्।। (नारदम. पु. पूर्व. 67/131-132)

दुष्टों के त्रास को प्राप्त हुआ मनुष्य यथा प्राप्त उपचारों से अथवा मानसिक उपचारों से भगवान् की पूजा करे। उसके द्वारा इस प्रकार की गयी पूजा 'त्रासी पूजा' कही गयी है। पूजा-साधन-सामग्री जुटाने की शक्ति न होने पर यथा प्राप्त पत्र, पुष्प और फल का संग्रह करके उन्हीं के द्वारा या मानसोपचार से भगवान् का पूजन करे। यह 'साधनाभाविनी' पूजा कही गयी है।

स्त्री, वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्प ज्ञान के अनुसार जिस किसी क्रम से चाहे जैसे भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी पूजा कहते हैं। इस प्रकार साधक को जिस किसी तरह भी संभव हो देवपूजा करनी चाहिये।

जो व्यक्ति सम्पूर्ण पूजाविधियों के सम्पादन में समर्थ होकर भी ऊपर बताये हुए अपूर्ण अथवा अनुचित विधान का अनुष्ठान करता है, उसे सम्पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती है। अतः निष्कर्ष यह है कि शास्त्रीय विधि के अनुसार ही हमें पूजा-अर्चना करनी चाहिये, मनमानें ढंग से नहीं।

❀❀❀❀❀❀

1. उपर्युक्त पाँचों प्रकार की पूजा का उल्लेख मन्त्रमहोदधिः (22/168-176) में भी किया गया है।